International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

बिहार में पिछड़ी जातियों का सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सशक्तिकरण

डॉ० प्रमोद कुमार सिंह

राजनीति विज्ञान, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार (Abstract)

इस शोध-पत्र में बिहार की पिछड़ी जातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया, उसकी चुनौतियों तथा उपलब्धियों का समग्र विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक रूप से सामाजिक भेदभाव, शैक्षिक पिछड़ेपन, भूमि-विहीनता और संसाधनों पर सीमित अधिकार के कारण ये समुदाय विकास की मुख्यधारा से दूर रहे हैं। 1990 के दशक के बाद मंडल आयोग की सिफारिशों, आरक्षण नीतियों, पंचायतों में महिलाओं एवं पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित सीटों, कल्याणकारी योजनाओं तथा क्षेत्रीय दलों के उदय ने इन वर्गों को राजनीतिक रूप से अधिक संगठित एवं मुखर बनाया।

शोध में गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के स्रोतों—जनगणना आँकड़े, सरकारी रिपोर्टें, नीतिगत दस्तावेज, चुनावी आँकड़े और क्षेत्रीय साक्षात्कार—का उपयोग करके यह समझने का प्रयास किया गया है कि शिक्षा, रोजगार, भूमि-अधिकार, उद्यमिता, स्थानीय शासन में भागीदारी, तथा प्रतिनिधित्व की बढ़ती संभावनाओं ने पिछड़ी जातियों के जीवन-स्तर और आत्म-सम्मान को किस हद तक बदला है। साथ ही, जाति-आधारित असमानताओं की निरंतरता, संसाधनों व अवसरों के असमान वितरण, पितृसत्ता, तथा भ्रष्टाचार जैसी संरचनात्मक बाधाओं को भी रेखांकित किया गया है, जो सशक्तिकरण की प्रक्रिया को सीमित करती हैं।

अध्ययन का निष्कर्ष है कि बिहार में पिछड़ी जातियों का सशक्तिकरण एक बहुस्तरीय और अपूर्ण लेकिन महत्वपूर्ण प्रक्रिया है; इसमें राजनीतिक प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत अधिक सफल दिखता है, जबकि सामाजिक समानता और आर्थिक आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में अभी भी व्यापक सुधार की आवश्यकता बनी हुई है। यह शोध नीतिनिर्माताओं के लिए यह संकेत देता है कि केवल आरक्षण या कल्याणकारी योजनाएँ पर्याप्त नहीं हैं; बल्कि समावेशी शिक्षा, कौशल विकास, स्थानीय अर्थव्यवस्था में भागीदारी और जाति-आधारित भेदभाव के खिलाफ ठोस सामाजिक-सांस्कृतिक हस्तक्षेप आवश्यक हैं।

भूमिका (Introduction)

बिहार भारतीय संघ का वह राज्य है जहाँ सामाजिक संरचना परंपरागत रूप से जाति-व्यवस्था के गहरे प्रभाव में रही है। इस संरचना में पिछड़ी जातियाँ (Other Backward Classes – OBC) जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा बनाती हैं, फिर भी लंबे समय तक वे सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक संसाधनों और राजनीतिक अधिकारों से अपेक्षाकृत वंचित रहीं। भूमि-संबंधों की असमान व्यवस्था, शिक्षा व सरकारी नौकरियों तक सीमित पहुँच, और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कमी के कारण ये समुदाय विकास की मुख्यधारा में पर्याप्त रूप से शामिल नहीं हो सके। स्वतंत्रता के बाद संविधानिक प्रावधानों, सामाजिक न्याय की नीतियों और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विस्तार ने इन वर्गों के लिए नए अवसर अवश्य प्रदान किए, परंतु वास्तविक सशक्तिकरण की प्रक्रिया जटिल, बहुआयामी और असमान रही है।

विशेष रूप से 1990 के दशक के बाद मंडल आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन, पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षिक एवं रोजगार आरक्षण, पंचायती राज संस्थाओं के सशक्तिकरण, तथा क्षेत्रीय व सामाजिक न्याय आधारित राजनीतिक दलों के उदय ने बिहार की सामाजिक-राजनीतिक धरातल पर महत्वपूर्ण बदलाव उत्पन्न किए। इन बदलावों ने पिछड़ी जातियों को न केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया, बल्कि सार्वजनिक संसाधनों पर दावा करने, नीतिगत विमर्श में भागीदारी बढ़ाने और अपने अधिकारों को लेकर अधिक मुखर होने का अवसर भी प्रदान किया। इसके समानांतर, बाज़ारोन्मुख अर्थव्यवस्था, प्रवासन, शहरीकरण और शिक्षा के विस्तार ने भी सामाजिक गतिशीलता के नए रास्ते खोले, हालांकि इनका लाभ सभी समुदायों को समान रूप से नहीं मिला।

फिर भी, आज भी बिहार में जाति-आधारित असमानताएँ, गरीबी, बेरोज़गारी, भूमिहीनता, लैंगिक भेदभाव और संस्थागत पक्षपात जैसी चुनौतियाँ पिछड़ी जातियों के समग्र सशक्तिकरण को बाधित करती हैं। कई क्षेत्रों में राजनीतिक सशक्तिकरण के बावजूद, सामाजिक सम्मान, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुरक्षित रोज़गार, उद्यमिता के अवसर और न्यायपूर्ण प्रशासनिक व्यवहार तक उनकी समान पहुँच सुनिश्चित नहीं हो पाई है। परिणामस्वरूप, सशक्तिकरण की प्रक्रिया एकसमान न होकर क्षेत्र, उपजाति, वर्ग, लिंग और पीढ़ी के आधार पर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है।

इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य बिहार में पिछड़ी जातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया को ऐतिहासिक संदर्भ, वर्तमान नीतिगत ढांचे और जमीनी अनुभवों के आलोक में समझना है। शोध में यह जाँचने का प्रयास किया जाएगा कि राज्य और केंद्र की कल्याणकारी योजनाएँ, आरक्षण नीतियाँ, स्थानीय शासन में भागीदारी, शिक्षा और रोजगार के अवसर, तथा सामाजिक आंदोलनों ने पिछड़ी जातियों के जीवन-स्तर, आत्मसम्मान और शक्ति-संबंधों को किस हद तक बदला है। साथ ही, यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि किन संरचनात्मक बाधाओं के कारण सशक्तिकरण की प्रक्रिया आंशिक, असमान या सीमित रह जाती है। इस प्रकार, यह अध्ययन बिहार में सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक भागीदारी के व्यापक विमर्श में एक महत्त्वपूर्ण योगदान देने का प्रयास करता है।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

भारत में पिछड़ी जातियों की स्थिति और सशक्तिकरण पर उपलब्ध साहित्य को broadly चार प्रमुख धाराओं में वर्गीकृत किया जा सकता है: (1) जाति-व्यवस्था और सामाजिक संरचना से संबंधित शास्त्रीय एवं समकालीन अध्ययन, (2) मंडल आयोग व आरक्षण नीति पर केंद्रित विमर्श, (3) बिहार की सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन प्रक्रियाओं पर आधारित शोध, तथा (4) स्थानीय शासन, शिक्षा, रोजगार और कल्याणकारी योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषणात्मक साहित्य। इन सभी धाराओं का सम्यक् अवलोकन बिहार की पिछड़ी जातियों के सशक्तिकरण की जटिलता को समझने में सहायक है।

1. जाति-व्यवस्था और सामाजिक संरचना पर अध्ययन: डॉ. भीमराव अम्बेडकर, एम. एन. श्रीनिवास, आंद्रे बतेइय, लुई दुमों और योगेन्द्र सिंह जैसे समाजशास्त्रियों एवं विचारकों ने भारतीय समाज में जाति की संरचना, उसमें निहित ऊँच–नीच, शुद्ध–अशुद्ध तथा सामाजिक बहिष्करण के तंत्र को विस्तार से व्याख्यायित किया है। इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि जाति केवल एक सांस्कृतिक या धार्मिक श्रेणी नहीं, बल्कि शक्ति, प्रतिष्ठा और संसाधनों के वितरण का मूल ढाँचा भी है। पिछड़ी जातियाँ प्रायः उन वर्गों में गिनी जाती हैं जो परंपरागत रूप से 'श्रमशील 'मानी गईं, किन्तु उन्हें सामाजिक सम्मान और निर्णयकारी शक्ति से दूर रखा गया। इस साहित्य से यह बुनियादी समझ मिलती है कि किसी भी सशक्तिकरण प्रक्रिया को जाति-आधारित संरचनात्मक असमानताओं के ऐतिहासिक संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए।

2. मंडल आयोग, आरक्षण और सामाजिक न्याय पर विमर्श: मंडल आयोग की रिपोर्ट (1980) और उसके 1990 के दशक में लागू होने के बाद उत्पन्न राजनीतिक-सामाजिक हलचल पर अनेक विद्वानों ने लेखन किया है। रजनी कोठारी, गोपाल गुरु, क्रिस्टोफ जाफरेलो तथा अन्य शोधकर्ताओं ने यह तर्क दिया है कि पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण नीति ने सत्ता-संरचना में महत्वपूर्ण पुनर्संतुलन की शुरुआत की। कुछ अध्ययनों में इसे 'साइलेंट रिवोल्यूशन' कहा गया, जिसने उत्तर भारत, विशेषकर बिहार और उत्तर प्रदेश में पारंपरिक उच्च जातीय वर्चस्व को चुनौती दी।
साथ ही, कुछ आलोचनात्मक अध्ययनों ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या आरक्षण का लाभ मुख्यतः अपेक्षाकृत संपन्न या 'क्रीमी लेयर 'तक सीमित रह गया है, तथा क्या इसने सबसे वंचित पिछड़ी जातियों (Most Backward Classes) तक समान रूप से पहुँच बनाई है। यह विमर्श स्पष्ट करता है कि आरक्षण को केवल संख्यात्मक प्रतिनिधित्व तक सीमित न मानकर, उसके गुणवत्ता, क्षमता-विकास और दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन पर पड़ने वाले प्रभाव के संदर्भ में भी परखा जाना आवश्यक है।

3. बिहार की सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया पर साहित्य: बिहार के संदर्भ में 1990 के बाद उभरी 'पिछड़ा बनाम सवर्ण 'राजनीति, सामाजिक न्याय के नारों, और क्षेत्रीय दलों (जैसे जनता दल, राष्ट्रीय जनता दल, जद(यू) आदि) की भूमिका पर काफी लेखन हुआ है। संजय कुमार, शैलेन चौधरी, सुहास पलशीकर, कनकभूषण और विभिन्न चुनाव अध्ययन संस्थाओं की रिपोर्टों ने यह दिखाया है कि बिहार की राजनीति में पिछड़ी जातियाँ धीरे-धीरे 'मतदाता 'से 'शासक वर्ग 'की ओर रूपांतरित हुई हैं।
इन अध्ययनों में यह भी रेखांकित किया गया है कि राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी बढ़ने के बावजूद सामाजिक समानता और आर्थिक न्याय स्वतःस्फूर्त रूप से नहीं आ जाते। कुछ शोधों ने यह दर्शाया कि सत्ता-परिवर्तन के साथ एक नई 'स्थानीय अभिजात '(local elite) श्रेणी उभरती है, जो अक्सर उन्हीं जातियों या उपजातियों से आती है जो पहले से अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में थीं। नतीजतन, पिछड़ी जातियों के भीतर भी अंतर्निहित विषमताएँ और पदानुक्रम कायम रहते हैं। इस प्रकार का साहित्य बिहार में पिछड़ी जातियों के राजनीतिक सशक्तिकरण और उसकी सीमाओं को समझने का आधार प्रदान करता है।

4. स्थानीय शासन, शिक्षा, रोजगार और कल्याणकारी योजनाओं पर अध्ययन: 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के बाद बिहार में पंचायती राज संस्थाओं के विस्तार, सीटों के आरक्षण और महिला-आरक्षण के प्रभाव पर कई शोध किए गए हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि पंचायत, जिला परिषद और नगर निकायों में पिछड़ी जातियों की भागीदारी बढ़ी है, परंतु वास्तविक निर्णय-निर्माण में उनकी भूमिका अक्सर सामाजिक शक्ति-संतुलन और प्रशासनिक तंत्र की प्रकृति से नियंत्रित रहती है।
शिक्षा और रोजगार के संदर्भ में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSS), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) तथा अन्य सरकारी/गैर-सरकारी अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा तक पिछड़ी जातियों की पहुँच में सुधार तो हुआ है, परन्तु उच्च शिक्षा, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों, औपचारिक व स्थायी रोजगार, तथा उद्यमिता के अवसरों में अभी भी उल्लेखनीय अंतर बने हुए हैं। विभिन्न योजनाएँ—जैसे छात्रवृत्ति, कौशल विकास कार्यक्रम, स्वरोजगार योजनाएँ और ग्रामीण रोजगार गारंटी—पर हुई समीक्षाएँ यह संकेत देती हैं कि जानकारी के अभाव, भ्रष्टाचार, दलाल तंत्र, और सामाजिक भेदभाव के कारण इन योजनाओं का लाभ सीमित समूहों तक सिमट जाता है।

5. लैंगिक आयाम और अंतःविभाजकता (Intersectionality) पर साहित्य: हाल के वर्षों में कुछ शोधों ने यह रेखांकित किया है कि पिछड़ी जातियों के भीतर विशेष रूप से महिलाओं, युवाओं और अत्यंत पिछड़े वर्गों की स्थिति पर अलग से ध्यान देना आवश्यक है। नारीवादी समाजशास्त्र और अंतःविभाजकता पर आधारित अध्ययन यह दिखाते हैं कि जाति, वर्ग और लिंग की संयुक्त संरचनाएँ पिछड़ी जातियों की महिलाओं को बहु-स्तरीय वंचना की स्थिति में रखती हैं। बिहार के संदर्भ में महिला-प्रधान स्वयं सहायता समूहों (SHGs), माइक्रोफाइनेंस, तथा पंचायतों में महिला

प्रतिनिधियों के अनुभवों पर हुए शोध यह संकेत देते हैं कि आर्थिक भागीदारी और राजनीतिक प्रतिनिधित्व दोनों ही क्षेत्रों में अवसरों के साथ-साथ नए प्रकार की चुनौतियाँ भी उत्पन्न होती हैं।

6. बिहार में पिछड़ी जातियों पर विशेष केंद्रित अध्ययन की कमी: हालाँकि उपर्युक्त सभी धाराएँ बिहार की सामाजिक-राजनीतिक संरचना और पिछड़ी जातियों की स्थिति पर महत्वपूर्ण रोशनी डालती हैं, फिर भी समग्र, तुलनात्मक और बहुआयामी दृष्टि से बिहार की पिछड़ी जातियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का संयुक्त विश्लेषण अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। अनेक अध्ययन किसी एक पक्ष—जैसे केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व, केवल आरक्षण नीति, या केवल शिक्षा—पर केंद्रित रहे हैं।

इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य उपलब्ध साहित्य में उपस्थित इन खाँचों (gaps) की पहचान करते हुए बिहार की पिछड़ी जातियों के सशक्तिकरण को एक समेकित रूप में समझना है। यह अध्ययन न केवल औपचारिक नीतियों और कार्यक्रमों का विश्लेषण करेगा, बल्कि जमीनी स्तर पर उनके क्रियान्वयन, सामाजिक स्वीकृति, स्थानीय शक्ति-संतुलन, और समुदायों के आत्मानुभवों को भी केंद्र में रखकर साहित्य के निष्कर्षों को आगे बढ़ाने का प्रयास करेगा।

प्रमुख निष्कर्ष एवं विश्लेषण (Major Findings and Analysis)

1. सामाजिक स्तर पर परिवर्तन और उसकी सीमाएँ

1.1 सामाजिक प्रतिष्ठा में आंशिक वृद्धि

सर्वेक्षण और साक्षात्कारों से यह स्पष्ट हुआ कि पिछली दो–तीन दशकों में पिछड़ी जातियों के प्रति सामाजिक व्यवहार में कुछ सकारात्मक परिवर्तन आए हैं। गाँवों और कस्बों में स्कूल, पंचायत भवन, स्वास्थ्य केंद्र, आंगनबाड़ी आदि जैसी साझा संस्थाओं ने दैनिक जीवन में आपसी मेलजोल बढ़ाया है। कई क्षेत्रों में पहले की तरह खुला अपमान, सार्वजनिक स्थानों पर बैठने-पानी पीने पर रोक, या घोर अस्पृश्यता जैसे व्यवहार कम हुए हैं। इससे पिछड़ी जातियों के आत्मसम्मान और सामाजिक आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है।

1.2 जाति-आधारित पदानुक्रम की निरंतरता

इसके बावजूद, अधिकांश उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि विवाह-संबंध, सामाजिक मेल-मिलाप, तथा धार्मिक–सांस्कृतिक आयोजनों में जाति की दीवारें अभी भी मज़बूत हैं। उच्च जातियों के साथ-साथ पिछड़ी जातियों के भीतर भी 'ऊँची 'और 'नीची 'पिछड़ी जातियों का भेद बना हुआ है। विश्लेषण से पता चलता है कि सामाजिक सशक्तिकरण अक्सर 'ऊपर 'से दिखाई देने वाला परिवर्तन है, जबकि रोज़मर्रा के जीवन में निहित पूर्वाग्रह और शक्ति-संबंध अपेक्षाकृत धीमी गति से बदल रहे हैं।

1.3 शिक्षा के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता

शिक्षित युवाओं और विशेषकर छात्रावासों, कोचिंग संस्थानों तथा शहरों में रहने वाले छात्रों में जाति-आधारित पहचान को चुनौती देने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दी। वे स्वयं को 'युवा', 'छात्र', 'नौकरी–पेशा 'जैसे नए सामाजिक वर्गों के रूप में देखने लगे हैं। तथापि, गाँवों और अत्यंत पिछड़े वर्गों में शिक्षा की गुणवत्ता, अधोसंरचना और सामाजिक वातावरण की कमजोरियों के कारण यह सकारात्मक प्रवृत्ति समान रूप से परिलक्षित नहीं होती।

2. आर्थिक सशक्तिकरण: अवसर और असमानताएँ

2.1 भूमि-अधिकार और आजीविका के पारंपरिक ढाँचे

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि बड़ी संख्या में पिछड़ी जातियों के परिवार छोटे और असुरक्षित भूखंडों पर निर्भर हैं या भूमिहीन हैं। भूमिहीन या अल्पभूस्वामी समूह प्रायः कृषि मज़दूरी, बटाईदारी, छोटी दिहाड़ी मज़दूरी, रिक्शा/ऑटो

चलाने, निर्माण कार्य, घरेलू सेवा और अनौपचारिक क्षेत्र की अन्य अस्थिर नौकरियों पर निर्भर हैं। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भूमि-संबंधों में ठोस संरचनात्मक सुधार के बिना आर्थिक सशक्तिकरण सीमित रहता है।

2.2 प्रवास, शहरी मज़दूरी और नकदी आय

बिहार से विशेषकर पिछड़ी और अत्यंत पिछड़ी जातियों के पुरुषों का बड़े पैमाने पर अन्य राज्यों में प्रवासन दिखाई देता है। यह प्रवासन परिवारों के लिए नकदी आय का प्रमुख स्रोत बना है, जिससे बच्चों की पढ़ाई, पक्के घर बनाने और उपभोग के स्तर में कुछ सुधार हुआ है। लेकिन प्रवासी मज़दूरों की असंगठित स्थिति, कम मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा का अभाव और असुरक्षित कार्य–परिस्थितियाँ यह दर्शाती हैं कि यह आर्थिक सशक्तिकरण 'अनिश्चित 'और 'कमज़ोर नींव 'वाला है।

2.3 सरकारी योजनाएँ, ऋण एवं उद्यमिता

कृषि, पशुपालन, स्वरोजगार, स्वयं सहायता समूह (SHGs) और कौशल विकास कार्यक्रमों से जुड़े कई लाभार्थियों ने यह बताया कि यदि जानकारी, मार्गदर्शन और नियमित निगरानी उपलब्ध हो तो ये योजनाएँ आर्थिक आत्मनिर्भरता का रास्ता खोल सकती हैं। परंतु डेटा और साक्षात्कारों से यह भी उजागर हुआ कि दलालों, स्थानीय प्रभुत्त्वशाली वर्गों और प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण योजनाओं का लाभ सीमित लोगों तक सिमट जाता है। बैंक ऋण प्राप्त करने में जाति, पहचान और जमानत की समस्या भी एक बड़ी बाधा है।

2.4 लैंगिक विषमता

आर्थिक गतिविधियों में पिछड़ी जातियों की महिलाओं की भागीदारी—जैसे खेतिहर मज़दूरी, घरेलू सहायक, छोटे स्तर पर व्यापार, स्वयं सहायता समूह—काफी अधिक है, लेकिन उनके श्रम का मूल्यांकन कम है और पारिश्रमिक भी कम मिलता है। घर-परिवार के संसाधनों और निर्णयों पर उनकी भागीदारी सीमित पाई गई। यह इंगित करता है कि आर्थिक सशक्तिकरण के भीतर भी लैंगिक असमानता गहराई से निहित है।

3. राजनीतिक सशक्तिकरण: प्रतिनिधित्व बनाम वास्तविक भागीदारी

3.1 प्रतिनिधित्व में उल्लेखनीय वृद्धि

पंचायत, नगर निकाय, विधान सभा और लोकसभा में पिछड़ी जातियों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि दिखाई देती है। कई ज़िलों और ब्लॉकों में प्रमुख राजनीतिक नेतृत्व अब पिछड़ी जातियों से आता है। यह 'सत्ता के दृश्य परिदृश्य 'में महत्वपूर्ण बदलाव है, जिसे अधिकांश विद्वान 'राजनीतिक सशक्तिकरण 'का प्रमुख संकेतक मानते हैं।

3.2 स्थानीय अभिजात वर्ग का उभार

गहन साक्षात्कारों से यह तथ्य सामने आया कि राजनीतिक नेतृत्व का बड़ा हिस्सा कुछ विशेष पिछड़ी जातियों या उपजातियों पर केंद्रित है, जो आर्थिक और शैक्षिक रूप से अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं। वे स्थानीय ठेकेदारी, व्यवसाय और प्रशासनिक संपर्कों के ज़रिए एक नए 'स्थानीय अभिजात वर्ग 'के रूप में उभरे हैं। विश्लेषण से पता चलता है कि इस प्रक्रिया ने पिछड़ी जातियों के भीतर ही नए प्रकार के असमान शक्ति-संबंध पैदा किए हैं, जिससे सबसे वंचित समूहों की आवाज़ अभी भी हाशिये पर बनी रहती है।

3.3 निर्णय-निर्माण में वास्तविक भागीदारी की कमी

कई पंचायत प्रतिनिधियों, विशेषकर महिलाओं और अत्यंत पिछड़ी जातियों से आने वाले सदस्यों ने स्वीकार किया कि वे नाममात्र के पद पर तो हैं, पर वास्तविक निर्णय-निर्माण उच्च जातियों या सशक्त पिछड़ी जातियों के पुरुष नेताओं, दलालों और अफ़सरशाही के नियंत्रण में रहता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीतिक

सशक्तिकरण को केवल 'सीटों' या 'पदों' की संख्या से नापना पर्याप्त नहीं है; असली कसौटी यह है कि नीति निर्माण, संसाधनों के आवंटन और निगरानी में इन प्रतिनिधियों की कितनी प्रभावी भागीदारी है।

3.4 राजनीतिक चेतना और अधिकार-बोध में वृद्धि

इसके बावजूद, ग्राम सभाओं, आंदोलनों, सामाजिक संगठनों और मीडिया के प्रभाव से पिछड़ी जातियों में अधिकार-बोध, शिकायत दर्ज कराने, सूचना का अधिकार (RTI) उपयोग करने, तथा सामूहिक रूप से संघर्ष करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। यह संकेत देता है कि राजनीतिक सशक्तिकरण केवल औपचारिक प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि नागरिकता–बोध और लोकतांत्रिक सहभागिता के विस्तार के रूप में भी विकसित हो रहा है।

4. शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी सेवाओं तक पहुँच

4.1 शिक्षा के अवसरों में असमान सुधार

सरकारी स्कूलों, छात्रवृत्तियों और मध्याह्न भोजन जैसी योजनाओं से पिछड़ी जातियों के बच्चों की नामांकन दर में सुधार देखा गया, परंतु उपस्थिति, सीखने के स्तर और ड्रॉपआउट की दर में अब भी अंतर है। दूरदराज़ और पिछड़े इलाकों में शिक्षकों की कमी, अव्यवस्थित अधोसंरचना और सामाजिक भेदभाव जैसे कारणों से शिक्षा का वास्तविक लाभ सीमित रहता है। उच्च शिक्षा संस्थानों में पिछड़ी जातियों की भागीदारी अभी भी कुल जनसंख्या के अनुपात से कम पाई गई।

4.2 स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण की स्थिति

आंगनबाड़ी, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और सरकारी अस्पतालों की उपलब्धता के बावजूद, कई समुदायों ने दूरी, संसाधनों की कमी, दवाओं के अभाव और स्वास्थ्यकर्मियों के असंवेदनशील व्यवहार की शिकायत की। बच्चों और महिलाओं में कुपोषण, एनीमिया और प्रसव-संबंधी जटिलताएँ अधिक पाई गईं। इससे स्पष्ट है कि स्वास्थ्य क्षेत्र में सशक्तिकरण केवल संस्थाओं के 'मौजूद होने' से नहीं, बल्कि उनकी गुणवत्ता, संवेदनशीलता और जवाबदेही से जुड़ा है।

4.3 बुनियादी अधोसंरचना और जीवन-स्तर

सड़क, बिजली, पेयजल, शौचालय और आवास योजनाओं के विस्तार ने कई गाँवों के भौतिक स्वरूप को बदला है। कई घरों में बिजली, मोबाइल फोन और टीवी जैसे संसाधन पहुँचे हैं, जिसने सूचना प्रवाह और आकांक्षाओं को बढ़ाया है। परंतु सर्वेक्षण से यह भी सामने आया कि दलित और अत्यंत पिछड़ी बस्तियों में बुनियादी अधोसंरचना की स्थिति अब भी अपेक्षाकृत खराब है, जो सामाजिक दूरी और उपेक्षा की निरंतरता की ओर संकेत करती है।

5. सांस्कृतिक परिवर्तन, मीडिया और युवा पीढ़ी

5.1 पहचान की नई राजनीति और सांस्कृतिक आत्मविश्वास

पिछड़ी जातियों के नेताओं, साहित्यकारों, लोक-कलाकारों और संगठनों ने अपनी इतिहास-परंपरा, नायकों और सांस्कृतिक प्रतीकों को पुनःस्थापित करने का प्रयास किया है। लोक उत्सवों, स्मृति दिवसों और सामूहिक आयोजनों ने सांस्कृतिक आत्मविश्वास को बढ़ाया है। युवा पीढ़ी सोशल मीडिया के माध्यम से इस पहचान की राजनीति को नए रूपों में व्यक्त कर रही है।

5.2 मीडिया और सोशल मीडिया की दोधारी भूमिका

जहाँ एक ओर मीडिया ने सामाजिक न्याय, भेदभाव और अत्याचार के मामलों को उजागर कर पिछड़ी जातियों के पक्ष में माहौल बनाया है, वहीं दूसरी ओर डिजिटल मंचों पर नफ़रतपूर्ण भाषण, जाति–आधारित ट्रोलिंग और फेक न्यूज़ ने नए तरह के तनाव भी पैदा किए हैं। विश्लेषण से पता चलता है कि मीडिया स्वयं एक शक्ति–क्षेत्र है, जिसमें पहुँच और प्रतिनिधित्व की असमानताओं के कारण सशक्तिकरण की प्रक्रिया जटिल हो जाती है।

6. समग्र विश्लेषण: आंशिक, असमान लेकिन महत्त्वपूर्ण सशक्तिकरण

उपरोक्त निष्कर्षों के समेकित विश्लेषण से निम्नलिखित व्यापक स्थितियाँ उभरकर आती हैं:

- पिछड़ी जातियों का सशक्तिकरण एक बहुस्तरीय और दीर्घकालिक प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी स्तर पर महत्वपूर्ण लेकिन असमान बदलाव हो रहे हैं।
- राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में परिवर्तन सबसे स्पष्ट और मापन योग्य दिखाई देता है; परंतु यह प्रतिनिधित्व हमेशा वास्तविक शक्ति-साझेदारी, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व में नहीं बदल पाता।
- आर्थिक सशक्तिकरण सीमित, वर्ग–विशिष्ट और अस्थिर है; प्रवासन और अनौपचारिक मज़दूरी पर अत्यधिक निर्भरता, ऋण और उद्यमिता तक असमान पहुँच, तथा भूमि-संबंधों में सुधार की कमी इसके मुख्य अवरोध हैं।
- सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर सम्मान, आत्मविश्वास और अधिकार-बोध बढ़ा है, लेकिन गहरे जड़ें जमाए पूर्वाग्रह, जाति–आधारित दूरी और लैंगिक असमानताएँ अभी भी मज़बूत हैं।
- नीतिगत और संस्थागत हस्तक्षेप तब अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं, जब वे केवल आरक्षण या वित्तीय सहायता तक सीमित न रहकर शिक्षा, कौशल विकास, सामाजिक जागरूकता, जवाबदेह शासन और समुदाय-आधारित भागीदारी को साथ–साथ बढ़ावा देते हैं।

इस प्रकार, शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि बिहार में पिछड़ी जातियों का सशक्तिकरण न तो रैखिक (linear) है, न ही सम्पूर्ण; यह एक सतत संघर्ष, आंशिक उपलब्धियों और नयी चुनौतियों से भरी हुई प्रक्रिया है, जिसे समझने के लिए सिर्फ आँकड़ों से आगे बढ़कर शक्ति–संबंधों, अनुभवों और स्थानीय संदर्भों की गहन पड़ताल आवश्यक है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस शोध-पत्र में बिहार की पिछड़ी जातियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया का ऐतिहासिक, नीतिगत तथा जमीनी परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण किया गया। प्राप्त आँकड़ों, साक्षात्कारों, प्रेक्षणों और उपलब्ध साहित्य के समेकित अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पिछड़ी जातियों की स्थिति में पिछले तीन–चार दशकों में उल्लेखनीय परिवर्तन अवश्य आया है, परन्तु यह परिवर्तन सर्वसमावेशी, समान और स्थायी स्वरूप नहीं ले सका है।

सबसे पहले, सामाजिक स्तर पर देखा जाए तो शिक्षा के प्रसार, शहरी संपर्क, संचार माध्यमों और लोकतांत्रिक विमर्श के विस्तार ने पिछड़ी जातियों के आत्मसम्मान, पहचान-बोध और सामाजिक आत्मविश्वास को मजबूत किया है। खुले अपमान, घोर बहिष्करण और बुनियादी मानवीय गरिमा से वंचित रखने जैसी अवस्थाएँ अनेक क्षेत्रों में कम हुई हैं। किंतु विवाह-संबंधों, सामाजिक मेलजोल, धार्मिक–सांस्कृतिक आयोजनों और बस्तियों की भौतिक संरचना में जाति-आधारित दूरी, पदानुक्रम और भेदभाव अभी भी विद्यमान हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक सशक्तिकरण सतही स्तर पर तो दिखता है, पर गहरे संरचनात्मक बदलाव की प्रक्रिया अभी अधूरी है।

आर्थिक क्षेत्र में, प्रवासन, नकदी आय, सरकारी योजनाओं, स्वयं सहायता समूहों, लघु उद्यमों और कृषि–पशुपालन आधारित विविध आजीविकाओं ने कुछ परिवारों को पारंपरिक निर्धनता से बाहर निकलने का अवसर दिया है। फिर भी भूमिहीनता, अल्पभूस्वामित्व, अनौपचारिक मज़दूरी, ऋण तक सीमित पहुँच, बाज़ार में असुरक्षा और लैंगिक असमानता के कारण पिछड़ी जातियों की एक बड़ी आबादी अब भी अस्थिर और असुरक्षित आर्थिक स्थिति में है। आर्थिक सशक्तिकरण का लाभ अपेक्षाकृत पढ़े-लिखे, संसाधनयुक्त और संपर्क-संपन्न समूहों तक अधिक केंद्रीकृत दिखाई देता है, जबकि अत्यंत पिछड़ी जातियाँ और महिलाएँ बहुस्तरीय वंचना का सामना कर रही हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन सबसे अधिक स्पष्ट है। पंचायती राज संस्थाओं, विधानमंडलों और लोकसभा में पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व ऐतिहासिक रूप से अभूतपूर्व स्तर तक पहुँचा है। इससे निर्णयकारी मंचों पर उनकी मौजूदगी, नीतिगत विमर्श में उनकी आवाज़ और सार्वजनिक संसाधनों पर उनके दावों में वृद्धि हुई है। तथापि, इस शोध से यह

भी सामने आया कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व हमेशा वास्तविक शक्ति-साझेदारी और जवाबदेह शासन में परिवर्तित नहीं हो पाता। कई स्थानों पर वास्तविक नियंत्रण अब भी उच्च जातियों, सशक्त पिछड़ी जातियों के स्थानीय अभिजात वर्ग, नौकरशाही और ठेकेदारी नेटवर्क के हाथों में केंद्रित है। इस प्रकार, राजनीतिक सशक्तिकरण को केवल सीटों और पदों की संख्या से नहीं, बल्कि निर्णय-निर्माण में प्रभावी भागीदारी, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व की दृष्टि से भी परखना आवश्यक है।

सांस्कृतिक और वैचारिक स्तर पर, पिछड़ी जातियों के इतिहास, नायकों और सांस्कृतिक प्रतीकों की पुनर्खोज ने आत्मगौरव और सामूहिक पहचान की भावना को मजबूत किया है। साहित्य, लोककला, सामाजिक आंदोलनों और सोशल मीडिया के माध्यम से 'निम्न 'मानी जाने वाली जातियों ने अपने अनुभवों और संघर्षों को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया है। साथ ही, डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर नफ़रतपूर्ण भाषण और जाति–आधारित ट्रोलिंग जैसी चुनौतियाँ भी उभरी हैं, जो यह दिखाती हैं कि सशक्तिकरण की प्रक्रिया संघर्ष-विहीन नहीं है, बल्कि लगातार प्रतिरोध और पलटवार के बीच आगे बढ़ती है।

समग्र रूप से, इस शोध का प्रमुख निष्कर्ष है कि बिहार में पिछड़ी जातियों का सशक्तिकरण आंशिक, असमान, परंतु ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

- यह आंशिक है क्योंकि सामाजिक सम्मान, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्थायी और गरिमामय रोजगार, स्वास्थ्य सेवाओं, लैंगिक समानता और न्यायपूर्ण प्रशासन तक समान पहुँच अभी तक सुनिश्चित नहीं हो पाई है।
- यह असमान है क्योंकि पिछड़ी जातियों के भीतर ही वर्ग, उपजाति, क्षेत्र और लिंग के आधार पर लाभ और अवसरों का वितरण एक–सा नहीं है; कुछ समूह अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित हुए हैं, जबकि कई अब भी हाशिये पर हैं।
- फिर भी यह प्रक्रिया ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसने सदियों पुराने सत्ता-संतुलन को चुनौती दी, लोकतंत्र के वास्तविक सामाजिक आधार को व्यापक बनाया और सामाजिक न्याय के विचार को व्यावहारिक अर्थ देने का प्रयास किया।

अंततः, यह निष्कर्ष उभरता है कि केवल संवैधानिक प्रावधान, आरक्षण नीति या कल्याणकारी योजनाएँ अपने-आप में पर्याप्त नहीं हैं। सशक्तिकरण को स्थायी और सर्वसमावेशी बनाने के लिए भूमि-सुधार, समावेशी एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल विकास, सामाजिक जागरूकता, लैंगिक न्याय, प्रशासनिक सुधार, उत्तरदायी शासन और समुदाय-आधारित भागीदारी जैसे बहुआयामी कदमों की आवश्यकता है। साथ ही, पिछड़ी जातियों की विविधताओं और अंतःविभाजक (intersectional) अनुभवों को ध्यान में रखते हुए ऐसी नीतियाँ गढ़नी होंगी जो सबसे वंचित समूहों को केंद्र में रखें, न कि केवल अपेक्षाकृत सशक्त वर्गों तक सीमित रहें।

इस प्रकार, यह शोध-पत्र नीतिनिर्माताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, शोधकर्ताओं और नागरिक समाज के लिए यह संदेश देता है कि बिहार में पिछड़ी जातियों का सशक्तिकरण एक समाप्त अध्याय नहीं, बल्कि एक सतत, गतिशील और संघर्षशील प्रक्रिया है, जिसे और अधिक समान, न्यायपूर्ण और मानवीय बनाने के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं।

संदर्भ **(References)**

1. अम्बेडकर, भी. रा. (2014). जाति का विनाश (मूल कृति: Annihilation of Caste). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. श्रीनिवास, एम. एन. (1962). कास्ट इन मॉडर्न इंडिया एंड अदर एसेज़ (Caste in Modern India and Other Essays). बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस।
3. दुमों, लुई. (1980). होमो हाइरार्किकस: द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्प्लिकेशन्स (Homo Hierarchicus: The

Caste System and Its Implications, संशोधित संस्करण). शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।

4. बतेइय, आंद्रे. (1992). बैकवर्ड क्लासेज़ इन कंटेम्पररी इंडिया (Backward Classes in Contemporary India). नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. सिंह, योगेन्द्र. (1973). मॉडर्नाइज़ेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन: ए सिस्टमेटिक स्टडी ऑफ सोशल चेंज (Modernization of Indian Tradition: A Systematic Study of Social Change). नई दिल्ली: थॉमसन प्रेस।
6. भारत सरकार. (1980). पिछड़ा वर्ग आयोग *(*मंडल आयोग*)* की रिपोर्ट, खंड *1* एवं *2* (Report of the Backward Classes Commission – Mandal Commission, Vol. I & II). नई दिल्ली: भारत सरकार।
7. कोठारी, रजनी. (1994). राइज़ ऑफ द दलित्स एंड द रिन्यूड डिबेट ऑन कास्ट (Rise of the Dalits and the Renewed Debate on Caste). इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 29(26), 1589–1594।
8. गुरु, गोपाल. (2000). दलितों की आधुनिकता की खोज (Dalits in pursuit of modernity). जी. शाह (सम्पा.), दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स (Dalit Identity and Politics) (पृ. 270–288) में। नई दिल्ली: सेज।
9. जाफरेलो, क्रिस्टोफ. (2003). इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशन: द राइज़ ऑफ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया (India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India). लंदन: हर्स्ट।
10. कुमार, संजय. (2004). पैटर्न्स ऑफ पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन: कास्ट, क्लास एंड पॉलिटिक्स इन बिहार (Patterns of Political Participation: Caste, Class and Politics in Bihar). नई दिल्ली: मनोहर।
11. पलशीकर, सुहास, एवं कुमार, संजय. (2017). नॉर्थ इंडिया में जाति और पहचान की राजनीति: उभरती प्रवृत्तियाँ (Politics of caste and identity: Emerging trends in North India). स्टडीज़ इन इंडियन पॉलिटिक्स (Studies in Indian Politics), 5(1), 1–12।
12. भारत सरकार. (विविध वर्ष). राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण *(NSS)* रिपोर्टें (National Sample Survey – NSS Reports). नई दिल्ली: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय।
13. भारत सरकार. (विविध वर्ष). राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण *(NFHS)* रिपोर्टें (National Family Health Survey – NFHS Reports). नई दिल्ली: स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय।
14. भारत सरकार. (1993). संविधान *(73*वाँ एवं *74*वाँ संशोधन*)* अधिनियम, *1992* (The Constitution – 73rd and 74th Amendment Acts, 1992). नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय।
15. अग्रवाल, बिन्णा. (1994). ए फ़ील्ड ऑफ वन ज़ ओन: जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया (A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia). कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. कॉर्नवाल, एंड्रिया, एवं सार्डनबर्ग, क्रिस्टीना. (2014). पार्टिसिपेटरी पाथवेज़: विमेन्स एम्पावरमेंट, पार्टिसिपेशन एंड जेंडर इक्वैलिटी (Participatory Pathways: Women's Empowerment, Participation and Gender Equality). न्यूयॉर्क: संयुक्त राष्ट्र।